मैं माटी की उपज हूँ
माटी से ही गुफ्तगू करता आया हूँ

वसन्त पोतदार

तो भई पढ़ूँ अब ?
हौ। दो तीन जन एक साथ बोले।
कुछ खाँस कर मैंने गला साफ किया और शुरू हुआ –

श्री विष्णुपंत दिनकरपंत चिंचाळकर उर्फ गुरूजी। देवास के बाशिंदे। जन्म तारीख 5 सितम्बर 1917। इस तारीख को आजकल शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है। गुरूजी ने अपनी जिंदगी शिक्षक बनकर ही शुरू की। मेट्रिक पास करके देवास की एक प्राथमिक शाला में ग्यारह रूपये माहवार पर वे मास्टरी करने लगे। कुछ वर्षों में ही हेडमास्टर हो गए और तनख्वाह में पूरे चार रूपयों की बढ़ौत्री हुई। फिर वे नौकरी छोड़कर इन्दौर आए और 1950–51 से कला महाविद्यालय में पढ़ाने लगे। तभी से उन्हें गुरूजी के नाम से संबोधित किया जाने लगा।
गुरूजी की ओर उठाकर उनसे पुछा 'ठीक है न गुरूजी ?'
यहाँ पर कागज पर गड़ी नज़र गुरूजी की ओर उठाकर उनसे पूछा, 'ठीक है न गुरूजी?'

गुरूजी हाँ लेकिन तुम्हें एक मजे की बात बताऊँ? आज चौसठ साल की उम्र तक (संदर्भ तब का जब लेख बन रहा था) यह गुरूजी सिर्फ एक ही शिष्य तैयार कर सका यार।

कौनसा ? उत्स्फूर्त समूह प्रश्न।

उसका नाम है विष्णु। विष्णु चिंचालकर।
हम सब हँस तो दिए मगर कुछ दम नहीं था उस हँसी में।

गुरूजी एक विदारक सत्य बोल गए थे। गुरूजी ने आम आदमी तक चित्रकारिता का सरल, सुगम स्वरूप पहुँचाने की कोशिश की है। बेकार चीजों में से कलात्मक छवियों को कैसे तराशा जा सकता है। यह गुरूजी चार दशको से दिखाते आ रहे है। मगर अफसोस यही है कि दर्शको की आँखे कुछ न सीख पाई। किसी की रबड़ की चप्पल का बंद टूटते ही उसे बस गुरूजी की टूटी चप्पल से बनी 'मोनालिसा' याद आ जाती है और वह अपनी चप्पल उन्हें भेंट स्वरूप दे जाता है। खुद कुछ भी नहीं खोज पाता।

मैं इसी ख्याल में उलझा था कि किसी ने कहा, ''आगे बढ़ ना।''

''बचपन से ही गुरूजी चित्र बनाने लगे थे। भोजन और शयन जैसा ही सहज था रेखाओं का अंकन। 1935 में गुरूजी ने इंदौर आकर चित्रकला विद्यालय में प्रवेश लिया और गुरू देवलालीकर के मार्गदर्शन में चित्रकला का अध्ययन शुरू किया। आगे चलकर अपने शिक्षक से तीव्र मतभेद होने के कारण विद्यालय छोड़ दिया और स्वतंत्र रूप से तैयारी करके, चौबीस वर्ष की आयु में, मतलब 1941 में गुरूजी बंबई से जी डी का इम्तहान पास कर आए। 1943 से 1950, इस अंतराल में गुरूजी ने दिल्ली, बंबई और कलकत्ता में हुई अखिल भारतीय प्रदर्शिनियों में तथा दिल्ली की अंतराष्ट्रीय चित्र प्रदर्शनी में प्रशस्ति–पत्र और पुरस्कार प्राप्त किए।

इलस्ट्रेटड वीकली ऑफ इंडिया के तत्कालीन संपादक माइकेल ब्राउन गुरूजी के रेखांकन से इतने अधिक प्रभावित हुए कि चित्रकार बाहर स्थित होने के बावजूद उन्होंने गुरूजी को कई कहानियों के लिए चित्र बनाने का काम सौंपा। इसके बाद...।''

''उसके बाद की बात बाद में...।'' राहुल बारपुते बोले। ''गुरूजी का कलकत्ते का किस्सा आना ही चाहिए यार इस लेख में।''

पु ल देशपांडे : वो क्या किस्सा है गुरूजी?

गुरूजी : कलकत्ते की अकादमी की अध्यक्षा लेडी रानू मुकर्जी ने मुझे लिखा कि आपकी कलाकृतियों पर हमने आपको छात्रवृत्ति प्रदान की है। कृपया कलकत्ते आइए। मेरे पास तो रेलभाड़े के भी पैसे भी नहीं थे। जैसे तैसे कलकत्ता पहुँचा। मुझे देखकर संयोजक

मंडली हैरत में आ गई। एक मामूली व्यक्तित्व का दुबला पतला युवक इतनी परिपक्व शैली की कृतियों का निर्माता हो सकता है, इस पर पहले तो उन्हें कतई विश्वास नहीं हुआ। जब हुआ तो वे उत्साह से ऐसे उछले कि पूछो मत। उस प्रदर्शनी में मैं खुद एक एक्जिबिट बन गया। मेरे निवास की व्यवस्था एक भव्य भवन में की गई। टीन का टूटा हुआ बक्सा लेकर उस आलीशान बंगले में रहने गया भैय्या मैं। दाढ़ी बनाते समय बाथरूम का दरवाजा ठीक से बंद हुआ या नहीं यह मैं बार–बार देख लेता। इसलिए कि हजामत का सामान बेहद घटिया था। एक पुराना उस्तरा,

उसे धारदार बनाने के लिए टोपी के भीतर लगाई जाने वाली चमड़े की पतली पट्टी और स्लेट का टुकड़ा, और दरवाज़ों को जिससे वार्निश करते है ना वह ब्रश। अब बताओ।

कुमार गंधर्व : मैं बताता हूँ। शायद वहीं से आपके कल्पनालोक में कूड़े से कला प्रकट करने की शुरूआत हुई होगी। भाई, (मतलब पु ल देशपांडे) वो सामने देखो। गुरूजी के तम्बाकू के बटुए के पास चूने की जो डिबिया रखी है उसे तो देखो। हाँ, ये। दाढ़ी बनाने के ब्रश के पेंदे में चूना रखा है और ढक्कन है स्याही की दवात का।

पाण्डू पारनेरकर : गुरूजी का घर तो ऐसे स्वनिर्मित उपकरणों से भरा पड़ा है। अटाले में से अनोखी वस्तुएँ बनाना गुरूजी के हाथ का, नहीं– सही कहूँ तो उगलियों का मैल है। आम की गुठली, कुल्फी की डण्डी, पुड़िया पर बांधा धागा, टूथपेस्ट की खाली ट्यूब, दीवार से खिसकी हुई चूने या गोबर की सूखी पपड़ी, फूटी बोतलें और टूटा हुआ फ़र्नीचर। कुल मिलाकर सभी खंडित अंग चीजों से गुरूजी अभंग और अकल्पनीय कलाकृतियों की सुरम्य झांकी खड़ी कर देते हैं।

चंदू नाफड़े : सिर्फ यही नहीं कि किसी टूटी–फूटी वस्तु से गुरूजी की कला साकार होती हो। वे तो बिलकुल भिन्न वस्तुएँ इकट्ठा कर गजब ढा देते हैं। जैसे उनका बनाया

नन्दी बैल। चश्मा रखने की डिबिया के एक ओर क़ागज अटकाने की स्लिप फँसाकर उन्होंने जो नंदी बैल बनाया वह साधारण कलाकार की कल्पनाशक्ति से परे है। मेरी मान्यता ये है कि सभी हस्तकलाओं की आत्मा है सूचकता। और आकार (फॉर्म) से एकात्मकता पाए बगैर ये सूचकता की उल्का पकड़ में आ ही नहीं सकती। और गुरूजी में जो कलाकार है वह इस आकार की ओर हर घड़ी उन्मुख रहता है।

राहुलजी : अरे कलकत्ते में तो दर्शक रामकृष्ण परमहंस देख कर दंग रह गए । शिल्पकार सुनीलदास, उपन्यासकार सुनील गंगोपाध्याय और कवि पार्थसारथी चौधरी सपने में भी नहीं सोच पाए और न पाते कि लकड़ी की कुर्सी की पीठ निकालकर और उलटकर रख दो तो परमहंस स्पष्ट दिखाई देते हैं।

भाई : ...और बंबई की प्रदर्शनी में गुरूजी का बनाया ईसा मसीह! बाहों वाली फटी बनियान से बना ईसा मसीह देखकर वो कलाकार दंपत्ति, क्या नाम राहुल उनका?
राहुलजी : होमी और नेली...

भाई : सेठना ! कुमार, होमी सेठना गुरूजी से बोले कि बाईबल में ईसा ने अपना खुद का वर्णन ''मैं चिथड़ों में हूँ'' ऐसा किया है। तो होमी ने कहा कि आजकल ईसा सभी स्थानों पर संगमरमर में ही ढलता है। आपने फटी बनियान में उसे प्रस्तुत किया है। अगर आज वह होता तो आपको दाद देता गुरूजी।

भाई के बखान से हम सब इस घटना को जानते हुए भी हिल गए। एकदम से भावाकुल माहौल। गुरूजी पर लिखी अपनी पंक्तियाँ मुझे खुद भयंकर उबाऊ लगने लगी। मैंने चुपके से लेख के कागजों को एक ओर रख दिया। किसी ने ध्यान तक नहीं दिया।

कुमारजी : सिर्फ कलाकृति ही नहीं, ठेठ प्रकृति की ओर कैसे देखा जाए ये मुझे गुरूजी ने ही सिखाया। भीमबेटका, अजंता–एलोरा, दक्षिण के मंदिर, गुरूजी के साथ देखते देखते मुझे दृष्टि मिली। उससे पहले सिर्फ कान थे, सुर समझता था। उनसे दोस्ती होने के पहले पेड़ों के पते देखता था, दरवाज़ों पर लगे ताले देखता था। केतली से चाय पीता था। लेकिन पीपल का पत्ता और अलीगढ़ी ताला साक्षात गणेशजी है, यह बात कभी दिमाग में ही नहीं आई थी– और केतली में तो मुकुटधारी गजानन के दर्शन!
गुरूजी की रेखा मुझे महान गायक रामकृष्ण बुवा वझे की याद दिलाती है। वझेबुवा की तान सुनते वक्त लगता था जैसे फ़ौलादी भाले को भीगी हुई धोतीसा निचोड़ रहे हैं। वही ताकत गुरूजी की रेखा में है। स्वयं को असामान्य समझने वालों की असलियत क्या है ये गुरूजी पलभर में समझ जाते है, लेकिन न उसे उसका उथलापन दिखाते है न उसकी गैरहाजिरी में उसकी निन्दा करते हैं। हम इसी पर चिढ़ जाते है। भड़कते भी हैं। गुरूजी से पूछते हैं कि क्या बेहद बेवकूफ नहीं है वो? गुरूजी का पेटंट जवाब, अरे यार मैं कूड़ा कर्कट में से सुंदर आकार सँवारता हूँ, तो जीते जागते मनुष्य को कैसे रिजेक्ट कर दूँ?

गुरूजी : यार ऐसा है, कि कलाप्रसाद के सोपान चढ़कर शिखरस्थ होने की महत्वाकांक्षा कभी रही ही नहीं। वैसे भी मुझमें एक कमजोरी है –वर्टिगो। ऊँचाई पर चढ़ा कि मुझे चक्कर आने लगते है। एक आर्किटेक्ट की बात अभी याद आई। वे बहुमंजिले मकान बनाते है। उनका कहना है कि ऊपर रहनेवालों में एक प्रकार की मानसिक विकृति आ जाती है। कारण स्पष्ट है। मिट्टी से रिश्ता टूट जाता है। सही मायनों में ये ऊँचे फ्लेटों में रहने वाले ही भूमिहीन हैं।

मैं माटी की उपज हूँ और माटी से ही करता आया हूँ। कुछ लोगों का ख्याल है कि मिट्टी में ही मिल गया हूँ, बिलकुल धराशायी हो गया हूँ। विजय तेंडुलकर ने मेरा काम देखकर कहा था, गुरूजी, आप में एक ही कमी हैं वह है महत्वाकांक्षा का अभाव। नहीं तो आप कहीं के कहीं पहुँच जाते। मैं सोचता हूँ नाम और शोहरत हो जाती तो क्या होता ? मेरे नाम की एक आर्ट गैलरी खड़ी हो जाती। मगर मेरे चारों ओर प्रकृति

ने नितांत सुरूप और सुदर्शन गैलरियाँ खड़ी कर दी हैं। वे सब मेरी अपनी ही तो हैं। उनमें मजे से घूमो, फिरो, देखो और आनंद लो। लोगों की नजरों में बेकार और बेकाम पड़ी छोटी–छोटी चीजों में मुझे मकसद दिखाई देने लगा है। मूंगफली के छिलके और फर्श पर जमी काई में मनोहारी कला छुपी है यह अहसास मुझे हुआ है। इन चीजों से भी जब प्यार हो गया तो मनुष्य को ठुकराना असंभव बात हो गई। और जब बाबा आमटे से मुलाकात हुई तो मेरे अहंकार का फोड़ा फूट गया। वे कितने महान कलाकार है। अन्य कलाकारों के साधन हैं उनके साज या रंग या घुंघरू। बाबा ने खुद इन्सान को ही साधन बनाया है। जीवित होकर भी खण्डहर बने कुष्ठरोगियों से उन्होंने एक क्षमता की कलाकृति गढ़ दी। इन्सान को माध्यम बनाना मुश्किल है। हमारे माध्यम प्रतिरोध नहीं करते। शिल्पकार जैसा चाहे वैसा आकार देता है मिट्टी को। बाबा का माध्यम इच्छाशक्ति रखता था। निराश मगर अख्खड़ माध्यम था वह। तो बाबा से मिलने के बाद जो कुछ अहम् की हवा थी वह भी फुस्स हो गई।

पाण्डू : मगर गुरूजी, बाबा से तो आप अभी–अभी मिले।
और रंग, ब्रश और केनवास से संन्यास लिए तो आपको बीस से भी अधिक वर्ष हो चुके।

गुरूजी : हर कलाकार की क्षमता का एक सीमा बिन्दु – होता है। उस अदृश्य बिन्दु तक ही उसके प्रयास का प्रवास चलता है। फिर तो एकसुरी रंटत शुरू हो जाती है। मगर, सीमा बिन्दु को छू कर भी गायक गाता रहता है, नर्तक नाचता रहता है। एक तो जीने के लिए पैसों की आवश्यकता रहती है, दूसरे कमाई हुई प्रतिष्ठा बरकरार रखने की आंकाक्षा कचोटती रहती है। जब मुझे पता चला कि मेरी प्रतिभा आविष्कार के सीमा–बिन्दु को स्पर्श कर चुकी है तो मुझे चित्र बनाने में लुफ्त रहा ही नही। कला का जो 'नवनवोन्मेषशाली' स्वरूप रहता है, वह खत्म हो चुका था। तब केनवास पर लीपा–पोती करते रहने में क्या तुक थी ? पिछले पैंतीस वर्षो में अगर पैंतीस सौ चित्र भी बनाता तो सिर्फ रंगों की बौछार और केनवास के फ्रेम में थोड़ी बहुत तब्दीली कर पाता। और वह कला नहीं हुई यार। हुआ सिर्फ क्राफ्ट। इसलिए मैं सीमित दायरे में जकड़ी हुई चित्रकला से पल्लू छुड़ाकर मुक्त रूप से फैली कला खोजने लगा।

मैं : आपने यह मुझे भी कहा था गुरूजी, इसलिए तो उस अमेरिकन युवक स्टीव को आपसे मिलवाने के लिए इन्दौर बुलवाया था।

चंदू : बसंत, ये स्टीव कौन ?

मैं : तुम भाई राहुलजी ने ग्रोतोवस्की का नाम सुना होगा। उस महान पोलिश रंगकर्मी ने अमेरिका में दौलत और शोहरत की बुलन्दी हासिल करने के बाद एक दिन बगावत कर दी। उसे अचानक महसूस हुआ कि इसी एक चक्र में मरते दम तक घुमते रहना फुजूल है। एक ही उम्र में वह दो जिन्दगियाँ बसर करना चाहता था। नाम और धन

छोड़ वह पोलैण्ड लौटकर तंत्र, योग, वूडू आदि माध्यमों से अपने सीमा–बिन्दु को लांघने की कोशिश में भिड़ गया। उसी का एक चेला था ये स्टीव। और गुरूजी आपसे मिलकर, आपका घर देखकर सीधे आपके चरणों में लोट गया था। बोला था, 'मेरे गुरू ग्रोतोवस्की जिस प्रक्रिया में फिलहाल हैं उसमें आप परिपूर्णता प्राप्त कर चुके हैं।'

गुरूजी : अरे काहे की परिपूर्णता ? मैं भी प्रक्रिया के दौर से ही गुज़र रहा हूँ।

कुमारजी : इसलिए मैं कहता हूँ कि गुरूजी साधक हैं। साधक हमेशा अपने को भीड़ से जुदा रखता है और भीड़ को भी चाहिए कि साधक से दूर रहे।

मैं : मगर भीड़ तो घेरती है ना गुरूजी को। और वो भी फरमाइशों के साथ।

भाई : मैं तो ये कहूँगा कि आम जनता ने उन्हें अपने में से एक माना है। इसी का प्रमाण है ये। धरातल से संपर्क छोड़कर गुरूजी कहीं अंतराल में नहीं जा बसे हैं। गुरूजी के लिए तो पानी और बर्फ की उपमा सटीक है। बर्फ़ पानी से ही बनता है ना ? पानी का वह सघन स्वरूप पानी में तैरते समय सिर्फ़ जरा सा ही ऊपर मुँह किए रहता है। उसका 7/8 वाँ हिस्सा जलराशि में ही डूबा रहता है। कलाकार भी बर्फ है। आम आदमी से बने एक कलाकार को जनमन में ही रहना चाहिए।

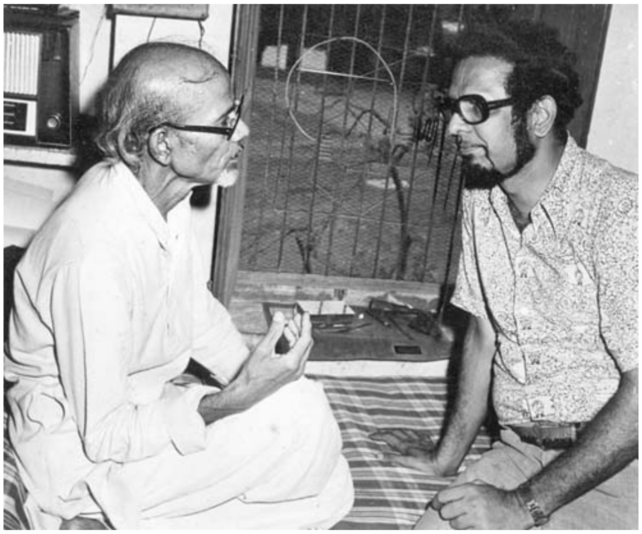

मैं वाह क्या बात कही भाई आपने।

भाई : अच्छा, आगे तो पढ़ो।

मैं : अब पढ़ने को बचा ही क्या है!

* * *

मध्यप्रदेश कला परिषद व्दारा आयोजित पुनरवलोकी प्रदर्शनी, 1981 के अवसर पर प्रकाशित पुस्तिका से ।